The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 4 | April 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

नियोग प्रथा के सन्दर्भ में विधवाओं की स्थिति का अवलोकन

राजेश कुमार पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, श्री रावतपुरा सरकार कॉलेज आरी, झांसी

Email: rajeshkumarpandey2780@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.20213088

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 29-04-2026

Published: 10-05-2026

Keywords:

भोग्या, नियोग, ऋचा, प्रेयसी

ABSTRACT

विधवा की स्थिति एवं नियोग विधवा की दिनचर्या, विधवा के जीवन के विभिन्न विकल्प, ब्रह्मचर्य जीवन, नियोग व पुनर्विवाह एवं सती प्रथा वैदिक कालीन पूजनीय नारी का इसके बाद के कालों में पुरुष प्रधान समाज ने नारी के उपर अनेक प्रतिबंध लगाकर इस तरह शोषण करना प्रारंभ किया कि उसकी स्थिति निरतर बिगड़ती गई और पूर्व मध्यकाल तक आते–आते वह मात्र भोग्या बनकर रह गई। जब पति एवं पुत्र आदि के रहते हुए एक सामान्य नारी की स्थिति इतनी बतर हो सकती है तो एक ऐसी नारी, जिसे न पति हो और न ही पुत्र आदि अर्थात् विधवा की स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में उनकी स्थिति कितनी दयनीय, नियंत्रित एवं दुःखद रही होगी। हिन्दू समाज में पति की मृत्यु के बाद स्त्री के लिए निर्देशित कर्तव्य के बारे में बड़ा ही विवाद रहा है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद की कुछ ऋचाओं से यह विवाद सुलझने के बजाय उलक्षते गये हैं। दाह सम्बंधी इन उक्तियों को विद्धवानों ने अलग–अलग ढंग से व्याख्या की है, जिससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि यह नियोग प्रथा या विधवा पुनर्विवाह प्रथा या सती प्रथा आदि किस और संकेत है। इसी तरह अन्य धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों में जहाँ एक और विधवा के लिए ब्रह्मचर्य जीवन–यापन का निर्देश दिया गया है, वही विशेष परिस्थिति में नियोग व विधवा पुनर्विवाह का भी उल्लेख किया गया है। मृतकों को परलोक में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपनी वस्तुओं खासकर उनकी प्रेयसी एवं पत्नियों की आवश्यकता होती थी। इसके अतिरिक्त सती प्रथा का भी संकेत कई जगह देखने को मिलते हैं।

हिन्दू समाज मे पति की मृत्यु के बाद स्त्री के लिए तीन मुख्य मार्ग या कर्तव्य थे जिसमें से किसी एक का विधवा के लिए अनुसरण करना वांछनीय था। 1. ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से नियोग का आश्रय लेना या पुनर्विवाह करना 3. पति के साथ सहभरण या अनुसरण करना अर्थात् सती होना। इस तरह अब हमें यह देखना है कि उपरोक्त तीन मार्गों में से किस मार्ग का किस काल में अधिक प्रचलन था और इसके पीछे क्या तर्क एवं उद्देश्य थे। किस परिस्थिति में नियोग निर्देशित किया गया और किस तरह यह प्रथा प्रचलित हुई। इसके अतिरिक्त विधवा जो कि बहुत ही विवश थी, के साथ किया गया व्यवहार से अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है जिसके सहारे हम एक संस्कृति एवं इसकी महिलाओं के प्रति धारणा का मूल्यांकन कर सकते हैं। ऋग्वेद में विधया शब्द कई बार आया है । ऋग्वेद के अनुसार मरूतों की अतिशीघ्र गतियों से पृथ्वी पतिहीन स्त्री की भाँति काँपती है। इससे स्पष्ट होता है कि विधवाएँ या तो दुःख के मारे या बलात्कार के डर से काँपती थी।' विवाह के वैदिक धारणा के अनुसार यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि वैवाहिक अग्नि के समक्ष पुरुष और स्त्री के बीच मिलन होता था जो मृत्यु के बाद भी अटूट एवं प्राण धारण किये हुए होता था। इस तरह एक महिला अपने पति की मृत्यु के बाद पुनः विवाह के लिए स्वतंत्र नहीं थी। प्रायः प्राचीन सभी धर्मषास्त्रकार एवं स्मृतिकार एकमत है कि एक नारी एक पुरूष से एक बार संयुक्त होती है तो वह सदा के लिए संयुक्त हो जाती है और उनसे संबंधविच्छेद उनकी मृत्यु के बाद भी नहीं हो सकता है। मनुदवारा प्रख्यापित व्यवस्था प्रायः सभी स्मृतियों में पाई जाती है।

कार्म तुक्ष्पयेदेहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृध्यीयात्पत्यों प्रेते परस्यतु।।

अर्थात् पति के मर जाने पर विधवा पुष्प, कन्द और फल के आहार से अपना शरीर क्षीण करें तथा दूसरे पुरुष का नाम भी नहीं ले। बौधायन धर्मसूत्र के मत से विधवा को साल भर तक मधु, मांस, मदिरा एवं नमक छोड़ देना चाहिए तथा भूमि पर शयन करना चाहिए, किन्तु मोदगल्य के मत से केवल छः मास तक ही ऐसा करना चाहिए। इसके उपरांत यदि यह पुत्रहीन हो और गुरूजन आदेश दें तो यह अपने देवर से एक पुत्र उत्पन्न कर सकती है।' यही बात वशिष्ठ धर्मसूत्र में भी है। वृहस्पति का कथन है, ''पत्नी पति की अर्धागिनी घोषित हो चुकी है. यह पति की चिता पर भस्म हो जाती है या जीवित रह जाती है, अपने पति के आध्यात्मिक लाभ को अवश्य प्राप्त करती है।'' इस तरह उपरोक्त उक्तियों में प्रायः तीनों बातों का संकेत मिलता है कि विधवा ब्रह्मचर्य जीवन यापन करे, सती हो जाय तथा विशेष परिस्थिति में यह अपने देवर से एक पुत्र उत्पन्न (नियोग) कर सकती है। मनु इस निर्देश को बार–बार दोहराते हैं कि एक लड़की को विवाह के लिए एक बार दिया जाता है। यह दूसरे रूप में विधान देने वालों के इस दृढ़ विश्वास को इंगित करता है कि महिला के लिए पुनर्विवाह नहीं हो सकता यदि अंत में उपरोक्त अनुमति के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए कभी भी साक्ष्य की आवश्यकता होती है तो यह स्मृति की भूल नहीं करने वाले अनुच्छेद के द्वारा आपूर्ति किया जाता है, जो घोषित करता है कि 'एक दूसरा पति सच्चरित्र महिला के लिए कहीं भी निर्दिष्ट नहीं है। याज्ञवल्क्य ने भी ऐसी ही समान स्थिति को उठाया है और आगे उनका विश्वास है कि समाज के ढाँचे का भ्रष्ट होने का प्रत्येक खतरा मौजूद है, यदि महिला को अपने पति की मृत्यु के बाद खुद को

पुरूषों से पुनर्मिलन की अनुमति दी जाती है। वे भी इस विचार धारा को मानते हैं कि कुँवारी लड़कियों की शादी सिर्फ एक बार हो सकती है।' यह विचारधारा दो व्यक्तियों के विचारों का एक में पूर्ण विलय था। यह कहा जा सकता है कि पति का गुण इस तरह से विश्वासी पत्नी का गुण हो जाता है. जिस तरह से नदी के पानी का गुण उस महासमुद्र का गुण हो जाता है जिसमें वह मिलती है। एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि पुरूष सिर्फ पुरूष ही नहीं है. वह पुरूष है, महिला है और सन्तान भी है। ऋषियों ने घोषणा की है कि पति पत्नी के समान है। यह स्पष्ट रूप से स्कन्द पुराण में कहा गया है कि यदि पत्नी उत्तम आत्मा की है और पति पापी भी तो पतिव्रताएँ अपने पतियों को यमदूतों की पकड़ से उसी प्रकार खींच सकती है. जिस प्रकार संपेरा बिल में से बलपूर्वक सर्प को खींच लेता है, पतिव्रताएँ पत्ति के साथ स्वर्गारोहण करती है और यमदूत उन्हें देखकर पुरत भाग जाते हैं। किंतु यहाँ हम एक असाधारण घटना को उदृत कर सकते हैं जिसमें पुनर्विवाह की प्रथा को उपरोक्त निर्देश के आवरण को हल्का करने के लिए स्पष्ट रूप से मजूर की गयी थी। इस तरह मनु विधवा के कर्तव्य पर लम्बा वार्तालाप करने के बाद कहते हैं कि यदि वह कुमारी रहते हुए (सतीत्व की रक्षा करते हुए) अपने प्रथम पति को छोड़ने के बाद उसके पास पुन लौट आती है तो उसके लिए उचित है कि वह अपने दूसरे पति के साथ पुनः वैवाहिक उत्सव सम्पन्न करें। इस तरह ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ ये सब विवाहित जवान लड़कियाँ जिनकी सिर्फ औपचारिकता के रूप में विवाह हो गया परंतु वे अपने विवाह की पूर्णता को नहीं जान सकी थी, को पुनर्विवाह की अनुमति दी गई। इसके अतिरिक्त जवान विधवा पुनः विवाह करने के सोच तक को पूर्णरूपेण त्याग दिया, क्योंकि अपने मृत साथी (पति) के प्रति विचार से अडिग बना रहना ही उनके लिए सर्वोत्तम धर्म था।

इस तरह उपरोक्त धर्मशास्त्रकारों एवं व्यवस्थाकारों ने एक तरफ विधुर के लिए पुनर्विवाह करने एवं ब्रह्मचारी नहीं रहने का आदेश दिया है वहीं दूसरी और विधवा के लिए ठीक इसके विपरीत व्यवस्था की व्याख्या की है। यह बड़ा ही गौरतलब है कि यदि ब्रह्मचर्य का पालन एक विधवा की आत्मिक उद्धार में सहायक था तो एक पुरुष (विधुर) को विश्वासपात्रता, निष्ठा एवं स्थिरता का पाठ क्यों नहीं पढ़ाया गया? यदि एक तरफ यह व्याख्या कि एक पुरुष बिना पत्नी का अपूर्ण है और अपने धार्मिक कर्तव्य को पूरा करने के लिए उन्हें पुनः विवाह करना अनिवार्य है तो दूसरी तरफ यह व्याख्या कयों नहीं दी गई कि एक विधवा को अ पने धार्मिक कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए दूसरा पति मिलना चाहिए? यह भी पुरूष के बिना उतना ही अपूर्ण है जितना पुरूष उसके बिना निष्पक्षता एवं ईमानदारी की बात तो यह होती कि दोनों के साथ समान व्यवहार किया जाता। यह तो स्पष्ट रूप से स्त्री एवं पुरूष में से पुरुष को सक्षम बनाने तथा स्त्री को अधिक सक्षम बनाने एवं उससे पुनर्विवाह के अधिकार को छीनकर लैंगड़ा करने जैसी बेरहमी है। इस तरह मनु एक स्थान पर कहे हैं कि ''अपनी पत्नी जो उनसे पहले मर जाती है के चिता को पवित्र अग्नि को दे चुकने के बाद वह पुनः विवाह कर सकती है और पुनः अग्नि को प्रज्वलित कर सकता है।' कुल्लूक उपरोक्त व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए इंगित करते हैं कि न केवल वह जिन्हें संतान नहीं है, पुनर्विवाह कर सकता है बल्कि वे पुरूष भी जिनके अनेक बच्चे हैं वे भी पुनर्विवाह के अधिकारी है। इस संदर्भ में यदि हम महिला के लिए निर्दिष्ट कर्त्तव्य एवं व्यवहार को याद करें तो यह आसानी से समझा जा सकता है कि यह निर्णय कितना

निर्लज्जतापूर्ण एवं अन्यायपूर्ण है। याज्ञवल्यय के नाम के साथ जुड़े धर्मशास्त्र इस मामले में और भी अधिक कठोर है। यह प्रख्यापित करता हैकि एक पुरूष को अपनी पत्नी जिसकी मृत्यु हो गई है के अंतिम धार्मिक क्रिया सम्पादन के बाद बिना किसी विलम्ब के शीघ्र ही दूसरी पत्नी विवाह कर लेना चाहिए अन्यथा उसके धर्म की उपलब्धि को हानि होगी मृत पत्नी के स्थान को तुरंत ही बिना किसी विलम्ब के दूसरी पत्नी के द्वारा ग्रहाण करने का स्पष्ट अर्थ है कि नारी का पुरूष के लिए कोई विशेष मूल्य की वस्तु नहीं समझा जाना। उन्हें पुरूष के लिए सिर्फ रिक्त–श्रृंखला समझा गया। इस तरह पुरूष अपनी जीवन के कथित धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनमें से किसी भी संस्था का व्यवहार कर सकता था। यही कारण है जिसने समाज में महिला की स्थिति को बहुत ही सोचनीय बना दिया। खासकर हिन्दू विधवा का भाग्य भयंकर मुश्किलों एवं अपमान का था। उपरोक्त धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार दूसरा विवाह सिर्फ सामाजिक मृत्यु के कीमत पर संभव था। अपने पति के सरक्षण से वह अपने पुत्रों के संरक्षण में पहुँच जाती है। यदि वे वालिग नहीं होती तो वह अपने पति के निकटतम सगे संबंधी पर आश्रित हो जाती। उनके जीवन से कठोरतम तप की अपेक्षा की जाती थी। एक बार से अधिक भोजन करना उनके लिए निषेध था तथा उत्तम बिछावन या सुगंधित पदार्थों का उपयोग उनके लिए त्याज्य था। कठोर धार्मिक अभ्यास उन पर लागू था। उसे अपने पति की स्मृति को प्रतिदिन भेंट करना था, तीर्थाटन को जाना था एवं विभिन्न प्रकार के व्रत एवं उपवास करना था। चाणक्य के समय में बहुत विलम्ब से विधवा पुनर्विवाह प्रथा प्रकाश में आयी। शायद आधुनिक शक्तियाँ इस मामले में पुनः क्रियाशील थी और यह काल स्त्रियों के लिए कुछ लाभप्रद साबित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम विधवाओं के अधिकार को धीरे–धीरे पहचान मिल रही थी। एवं महिला के प्रति न्याय की भावना धीरे–धीरे किंतु सख्त रूप से विकसित हो रही थी। अर्थशास्त्र में है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र जातियों से सम्बद्ध पत्नियों, जिसने बच्चे को जन्म नहीं दिया है. को अपने पति जो कि विदेश जा चुके हैं, का क्रमशः अधिक से अधिक एक, दो, तीन एवं चार वर्ष तक इतजार करना चाहिए और तब पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। किंतु यदि वे बच्चे को जन्म दे चुकी है तो उन्हें अनुपस्थित पति का एक वर्ष और अधिक इंतजार करना चाहिए। पुनः उस पति के मामले में जो तपस्वी हो गया है या मर चुका है और उनकी पत्नियों संतान पैदा नहीं की है तो वह पुनर्विवाह कर सकती है परंतु यदि उसने बच्चे को जन्म दे दिया है तो उसे एक वर्ष इजतार करने के बाद पुनर्विवाह करना चाहिए। बाद के स्मृतियों में अनेक ऐसे अनुच्छेद है जिसमें विधवा पुनर्विवाह की प्रथा का अनुमोदन किया गया है। नारद के अनुसार, जब पति की मृत्यु हो जाता है या खो जाता है. जब वह धार्मिक तपस्वी हो जाता है. जब वह जाति से बहिष्कृत हो जाता है तो इन पाँचो स्थिति में एक महिला दूसरे पति से पुनर्विवाह के लिए वैधानिक रूप से स्वतंत्र है। पराशर ने भी लगभग इसी तरह के निर्देश को यह कहते हुए प्रतिध्वनित किया कि जब एक महिला का पति गायब हो गया हो या मर गया हो या वैरागी हो गया हो या नपुंसक हो अथवा धार्मिक दृष्टिकोण से बहिष्कृत हो गया हो तो इन पाँचों विपत्ति की स्थिति में एक महिला को दूसरे पति की अनुमति दी गई है। इस तरह से नारद और पराशर दोनों ही महिला को न सिर्फ उस अवस्था में दूसरी शादी की अनुमति प्रदान करने में सहमत है जबकि उसके पति की मृत्यु हो गई है बल्कि उस अवस्था में भी दे इसकी स्वीकृति देते हैं यदि पति भाग गया हो जीवित होते हुए भी तपस्वी हो गया हो. या जाति बहिष्कृत हो गया है। तथापि पराशर मनु के अप्रतिहत प्रभाव में विधवा के लिए जीवन पर्यन्त वैराग्य का दूसरा

मार्ग भी निर्देशित करते हैं। इस संदर्भ में मनु का यह सही जवाब है कि महिला जो पति की मृत्यु के बाद पवित्रता का वचन पालन करती है वह ब्रह्मचारिणी के समान मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करती है।'' यह स्पष्ट है कि समय के आगे बढ़ने के साथ–साथ समाज की स्थिति अधिकाधि एक जटिल होती जा रही थी एवं यह आवश्यक समझा गया कि धार्मिक साहित्य के समय के प्राचीन प्रथाओं से विदा लेने के बाद भी प्राचीन प्रथाओं का आधुनिक प्रथाओं के समन्वय लाने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। इसलिए विधवा का पुनर्विवाह यद्यपि वेदों द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया तथापि इसे अनैतिकता के बढ़ते हुए बुराईयों को रोकने के लिए सिर्फ एक उपाय के रूप में स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त इसे विधवावस्था की मुश्किलों को कम करने के लिए एक स्वस्थ उपाय भी माना गया। संयुक्त परिवार की व्यवस्था स्वस्थ उपाय भी माना गया। संयुक्त परिवार की व्यवस्था क्रमशः टूटता गया और संबंध का झुकाव दिनानुदिन शिथिल पड़ता गया। इस तरह महिला अपने पति की मृत्यु के बाद प्रायः परिवार का बोझ समझी जाने लगी और उसे हमेशा दुःख की अवस्था में छोड़ दी गयी। उसे अपने माता–पिता के घर में भी एक पुत्री की तरह स्वागत नहीं होता, क्योंकि वह विधवा हो चुकी थी। इसलिए इस प्रकार के असहाय महिला के लिए पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान करना ही इस समस्या को समाप्त करने का सर्वोत्तम कालोचित दृष्टिकोण था। इस प्रकार यह प्रथा आगे बढ़ी। अब हम विधवा पुनर्विवाह प्रथा की अन्य वैध युक्तियों का उल्लेख करेंगे जो वास्तव में इस प्रथा का अग्रदूत था। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल में विधवा पुनर्विवाह प्रथा नाम की कोई प्रथा अस्तित्व में नहीं थी। परंतु अगर विधवा चाहती थीहो वह अपने पति के लिए पुत्र प्राप्ति हेतु पति के छोटे भाई के साथ रह सकती थी इस उद्देश्य के लिए विधवा को अपने पति के छोटा भाई जिसे देवर या देवरी कहा जाता है के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ रहने की प्रथा नहीं थी। इस प्रथा का स्मृति–शेष अभी भी भारत के कुछ भागों में पाये जाते हैं। उड़ीसा में कुछ निश्चित निम्नवर्गीय हिन्दुओं में पिता उस दुल्हा को विवाह में अपनी पुत्री देने को अनिच्छुक होते हैं जिन्हें छोटा भाई नहीं होता है, क्योंकि पति की मृत्यु के बाद उनके विधवावस्था का भय रहता है। किन्तु यदि उसे देवर है तो वह उस पर ठप्पा लगा सकती है। बिहार एवं उत्तरप्रदेश के कुछ निम्नवर्गीय हिन्दु भी विधवा को अपने पति के छोटे भाई के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहने की अनुमति देते हैं। को वा शयुत्रा विभवेव देवरम् उदीवं नार्यभि जीवलोक गता सुमेतमुपशेष एहि। यह ठीक है कि ऋग्वेद की इस उक्ति को पुनर्विवाह का प्रमाण नहीं मानकर सिर्फ देवर के संदर्भ में ही माना जाय जैसा कि उपर कहा गया है। फिर भी अथर्ववेद की उक्ति से तो पुनर्विवाह का स्पष्ट संकेत मिलता है।

यथाः– या पूर्व पति हित्वा अथान्य विन्दते पतिम् ।
पंचोदनां च तावजं ददातो न वियोषतः ।।
समान लोको न भवतु पुनर्भवा परः पति।
यां जं पंचोदन दक्षिणा ज्योतिष ददाति ।।''

अर्थात् यदि कोई स्त्री एक पति से विवाह करने के उपरांत दूसरे से विवाहित होती है, यदि वे (दोनों) एक बकरी और भात की पाँच थालियों देते हैं तो वे दोनों एक दूसरे से अलग नहीं होंगे। दूसरा पति अपनी पुनर्विवाहित पत्नी के

साथ वही लोक प्राप्त करता है, यदि वह पाँच मात की थालियों के साथ एक बकरी देता है तथा दक्षिणा ज्योतिः प्रदान करता है। इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद के मत में विधवा का पुनर्विवाह निषिद एवं वर्जित नहीं माना जाता था। हो सकता है इस प्रकार का विवाह तब तक सकता है कि वे लोग अशुभ नहीं मानी गयी और समारोह से बहिष्कृत नहीं की गयी, जैसा कि बाद के कालों से वर्त्तमान समय तक रूढ़िवादी हिन्दुओं में विद्यमान है। यद्यपि यह कहा सकता है कि विधवास्था एक महान विपत्ति थी। इसका कारण थोड़ा–बहुत स्वतः स्पष्ट है। महिलाएँ अबला के रूप में जानी जाती थी, अर्थात शक्तिहीन थी और इसलिए वे अपने संरक्षकों पर निर्भर करती थी। यद्यपि एक महिला अपने सभी संरक्षकों पर गर्व करती थी। किंतु पति से बड़ा संरक्षक कोई नहीं था। इसलिए पति की मृत्यु महिला के लिए सबसे बड़ी विपत्ति थी। इस तरह से मन्दोदरी सोचती है कि उसे पुत्र की मृत्यु उस पर एक बड़ा आघात था किन्तु रावण की मृत्यु के बाद उसने ऐसा अनुभव किया कि मानो उसकी अपनी ही हत्या हो गयी हो। पति की मृत्यु के बाद समाज ने विधवा को पुत्र के रूप में सरंक्षक दिया किन्तु वह तब भी स्वामी विहीन अर्थात् विधवा के रूप में जानी जाती थी।'' जब उसके स्वामी जीवित होते थे तो उस स्थिति में अपने पुत्र के साथ रहना किसी भी महिला की प्रतिष्ठा के खिलाफ था। राम ने कौशल्या के एक महत्वहीन विधवा की तरह उनके साथ चलने के प्रस्ताव को शीघ्र ही अस्वीकार कर दिया।'' पुत्र द्वारा दी गयी सुरक्षा को पूर्ण नहीं मानी गयी और इसलिए दोनों ही महाकाव्य में अनेक बार उल्लेख किया गया है कि यद्यपि एक विधवा को अनेक पुत्र थे तथापि वह अपने संबंधी तथा खुद अने आप के लिए दया की वस्तु थी।'' उसकी तुलना बिना धागे की वीणा और बिना पहिये की गाड़ी स की जाती रही है। एक विधवा मूलविहीन एवं सम्मानहीन अनुभव करती थी। कुलीन महिलाओं के लिए विधवावस्था एक बड़ी विपत्ति थी। विधवाएँ अपने इस अवस्था के लिए अनाथ शब्द का व्यवहार करती थी। इस तरह विधवावस्था का भय उनके अनेक संरक्षक होने के बावजूद भी, विधवा अथवा विधवा होने की संभावना वाली महिला के कथनों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता रहा है। ये उक्तियाँ प्रमाणित करती है कि विशेषण ''अनाथ'' उसके लिए सबसे उपयुक्त था। कोई भी व्यक्ति उसके समक्ष पहुँच सकता था। आदि पर्व में एक ब्राह्मणी कहती है कि जैसे पक्षी लोभ से भूमि पर फेके गये आहार या भोजनसर्वाधिक कठोर होती है। क्रमशः कुछ निश्चित प्रतिबंधों एवं स्वतंत्रता की परिसीमित करने के कारण महिलाएँ अपने बौद्धिक ज्ञान के अभाव में कुछ अधिक ही दुर्बल, पराश्रित एवं भावनात्मक हो गयी। इस तरह बाद में चलकर अंतिम संस्कार में भाग लेना उनके लिए असंभव हो गया और इस व्यवहार को पूर्णरूपेण त्याग दिया गया। महाकाव्य में यद्यपि विधवा शवदाह स्थल में चिता का परिभ्रमण की। परंतु सामान्यतः चिता को प्रज्वलित करने का कार्य किसी पुरुष संबंधियों द्वारा किया जाता था। इस तरह यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि महाकाव्य से शूर वीरों की विधवाओं का आचरण अवरोधों से मुक्त, साहसी, शांत एवं मर्यादित था और यह उनके मानसिक शक्ति का परिचायक है। रक्तरंजित युद्धों के उन दिनों में विजेताओं द्वारा पराजितों की विधवाओं के साथ अच्छा वत्तांव नहीं करने का खतरा था। यहाँ तक कि कृष्ण की विधवाएँ जिन्होंने लुटेरों का स्वेच्छा से अनुसरण की थी, बाद में अपने आपको को स्वयं सरस्वती नदी में डुबो दिया। यह स्पष्ट है कि वे सब खुशी नहीं थी, क्योंकि लुटेरों जैसा अपहरणकर्त्ता को महिलाओं के लिए आदर की भावना नहीं हो सकती।'' इसी प्रकार जब कुरू और पांढव महिलाओं को ऋषियों के सम्मुख उपस्थित की गयी, तब प्रत्येक पांडव महिला का अलग–अलग परिचय करया गया किंतु

कौरवों की पत्नियों को सक्षिप्त रूप से सामूहिक तौरपर परिचय करया गया। यह सही है कि वे संख्या में बहुत अधिक थी किंतु दुर्योधन और दुःशासन की पत्नियों कुछ विशिष्ट महत्व की थी और उनके साथ भिन्न प्रकार से वर्त्ताव करने की जरूरत थी। वे विधवाएँ थी और इसलिए ऐसा किया पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उत्तरा भी विधवा थी और उसका पूर्णरूप से परिचय करया गया। पराजितों के विधवा होने के कारण उन्हें दिया गया यह तुच्छ आदर और सम्मान हो सकता है धृतराष्ट्र एवं गान्धारी के प्रस्थान के बाद और भी बदत्तर स्थिति में पहुँच गया हो और यह उनकी आत्म हत्या के कारण रहे हों। इस तरह से राजागण अपनी पत्नियों की उचित सुरक्षा करने के अधिकारी थे, क्योंकि उनके लिए विजेताओं का सबसे बड़ा भय था। राम और युधिष्ठिर जैसे महाकाव्य के नायक जिन्होंने पराजितों की विधवाओं की देख–भाल ध्यानपूर्वक किया वैसा बहुत कम ही हुआ होगा, क्योंकि वे दोनों तात्कालीन नियम की अपेक्षा अपवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव थे शत्रु–महिलाओं को सताने वाले के रूप में रावण का मन्दोदरी द्वारा प्रशंसा की जाती रही है।'' ऐसे समाज में जहाँ एक विधवा का जीवन असुरक्षित था, वहीं राजा जो कि कमजोर एवं अनाश्रितों के संरक्षक थे का कर्तव्य हो जाता था कि वह कुटुम्बविहीन विधवाओं को सुरक्षा प्रदान करें और उन्हें आर्थिक रूप से मदद करें। उनसे ऐसा करने की अपेक्षा विशेष तौर पर उनलोगों के विधवाओं द्वारा की जाती थी, जिन्होंने उनके लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था।'' विधान के अनुसार राजागण वशहीन मरे हुए व्यक्ति की सम्पत्ति को सार्वजनिक प्रयोग हेतु ग्रहण कर लेते थे। इसलिए यह उचित था कि यह मरे हुए व्यक्ति के विधवा को आश्रय प्रदान करें। महान महाकाव्य के एक मत इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं होते और सेदन करती हुई महिला से राजाओं को धन नहीं लेने का आदेश दिया है। यह निश्चय ही विधवा के धन को नहीं लेने का संकेत है। ऐसा कहा गया कि इस तरह के बुरे कर्म सिर्फ कलियुग में किये जायेंगे। विधवा के साथ छल करने वालों को नर्क का भय दिखाकर भी विधवाओं के स्वार्थ की रक्षा की जाती रही है।'' युधिष्ठिर, परीक्षित और राम जैस अच्छे और आदर्श राजागण सदा विधवाओं की देखभाल करते थे, जो उनके अनुकरणीय आदर्शिता के आचरण को दर्शाता है। ऐसा कहा जाता रहा है कि जब एक अच्छा राजा शासन करता है, तब उसके साम्राज्य में कोई विधवा नहीं होती अथवा जब एक साम्राज्य पर समय खुश होता है तो विधवाएँ नहीं होती।'' यह यद्यपि चकित करने वाली उक्ति है जिससे रचयिता का यह अर्थ हो सकता है कि ऐसे साम्राज्य में अथवा काल में कोई दुःखी नहीं थे। यह स्वाभाविक था कि रक्तरंजित युद्ध के दिनों में सभी राजा के राज्यों में विधवाएँ थी और महाभारत में सती का पहला उदाहरण माद्री का मिलता है जिसका उल्लेख आदि पर्व में हुआ है। यह पर्व मुख्य रूप से सम्पादित किया गया है। ऐसा विद्ववानों का मत है। चूंकि महान महाकाव्य के कहानी वाला भाग सूत्रों के काल से सम्मत है और हम गृह्य सूत्रों में कहीं भी सती की अनुमति नहीं पाते हैं अत यह निश्चय ही बाद का संस्करण होगा। हो सकता है कि माद्री आघात से मरी हो क्योंकि दोनों (माद्री और पाण्डु) के शवों को बाद में हस्तिनापुर लाया गया था।'' स्त्री पर्व शोक, पश्चाताप एवं अंतिम सस्कारों से भरा पड़ा है। परंतु एक भी सती का उदाहरण नहीं है। वीरों के आयुधों एवं रथों को उनके साथ ही जला दिये जाते थे। सती का अनुसरण किया गया. इसका एक उदाहरण के रूप में महाभारत के उत्तर भाग में उद्धृत किया गया है। भारतीय लेखकों एवं रचयिताओं का सरल पशुओं की कहानियों के माध्यम से अपने सिद्धान्तों को प्रस्तावित करने का अपना ढंग रहा है। पाठकों को

प्रभावित करने एवं विश्वास दिलाने का यह एक विश्वसनीय तरीका है और आधुनिक शिक्षाविदों द्वारा इसे मान्यता भी मिली हुई है। कपोती के उदाहरण के माध्यम से सती को सत्यता को पाठक के घर पहुँचायी जाती है। एक कबूतर आतिथ्य के कर्त्तव्य का पालन करने हेतु मर जाता है और कपोती उसे पीछे मर जाती है। यह अनुसरण का एक उदाहरण है और इस कार्य के परिणामस्वरूप वह (कपोती) अपने पति के साथ स्वर्ग में रमण करती है। यह भी उल्लेखित किया जाता रहा है कि यदि इसी प्रकार से एक महिला सती सम्पादित करती है तो वह कपोती की तरह स्वर्ग में चमकती है। अतः जिस समय शांति पूर्व का यह भाग लिखा गया उस समय सती प्रथा को प्रोत्साहित करने हेतु गुणकारी परिणाम उनसे जोड़ा जाने लगा था। इसमें दो मत नहीं कि जीवित विधवाओं को संख्या की तुलना में सती की घटना अत्यंत अल्प थी। यह प्रथा धीरे–धीरे विकसित हो रही थी। मृत वीरों के साथ विधवा हुई महिलाएँ एवं आयुधों को जलाया जाना तथापि मौलिक प्रथा थी। ऐसा विश्वास अनेक प्राचीन लोगों को इसलिए था कि मृतकों को परलोक में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपनी वस्तुओं खासकर उनकी प्रेयसी एवं पत्नियों की आवश्यकता होती थी। यह विश्वास माद्री के वक्तव्य एवं कीचकों का द्रौपदी को कीचक के साथ जलाने के प्रयत्न में परिलक्षित होता है।'' ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा को इसके व्यवहार के प्राचीन स्मृति के लिए उत्तना अधिक नहीं अपनाया गया जितना कि पतिव्रता के आदर्श के लिए। विवाह के बाद पति का पत्नी पर अनंतकाल तक सम्पत्ति जैसा अधिकार के कारण भी यह प्रथा हो सकती है। हो सकता है महिला को अपने आपको जीवित जलाने की इच्छा उस समय के समाज या जनमानस द्वारा प्रशंसा के माध्यम से प्रोत्साहित की गयी हो। नीतिविदों एवं व्यवस्थाकारों द्वारा सती वो इसके बाद के ससार को उत्तम होने का विश्वास दिलाना, इस प्रथा के अनुसरण का कारण हो सकता है। महाकाव्य में आर्य विधवाओं के साथ पुनर्विवाह का उदाहरण नहीं मिलता है। कृष्ण के अविश्वासी विधवाओं तक की भी विवाह का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। वे लुटेरों के साथ स्वेच्छा से गयीं। भीष्म को सत्यवती का प्रस्ताव 'दरेनश्य कुरू धर्मेन अनुज के विधवा से विवाह के लिए नहीं था, क्योंकि अनुज के विधवा से विवाह की प्रथा नहीं थी। यह प्रस्ताव भीष्म की शादी के लिए था। इसे प्रमाणित करने के लिए अब भी कुछ तथ्य उपलब्ध है कि खास वर्गों में विधवा विवाह वैदिक काल से अवतरित हुआ था, जो अब भी प्रचलित है। महाभारत में पुनर्भू परापूर्वा, अन्यपूर्वा जैसे शब्दों जिसका कि स्मृतियों तक में प्रयोग किया गया है, प्रमाणित करता है कि विधवाओं का विवाह हुआ था। यह सच है कि यह प्रथा अलोकप्रिय हो रही थी। फिर भी इसका अस्तित्व बचा हुआ था। शाति पर्व के रचयिता विधवा के देवर के साथ विवाह करने की प्रथा से इतने अधिक परिचित थे कि इसे एक उपमा के रूप में प्रयोग किया। इससे स्पष्ट होता है कि देवर विधवा की पहली पसंद या पसंद की वस्तु था।

पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम।
एषः ते प्रथमः कल्प आप धन्यं अवेदत।।

सभवत यह सोचा गया कि पति की मृत्यु के बाद बफादार बना रहना कठिन है। उदाहरणार्थ सुभदा अपने पुत्र की मृत्यु पर क्रन्दन करती हुई उनके लिए (पुत्र) उस उत्तम ससार की शुभेच्छा करती है जिसे कठिन ब्रह्मचर्य धर्मका पालन करने वाले तपस्वी द्वारा प्राप्त की गयी हो अथवा उन महिलाओं द्वारा जो एक पति के साथ रहा हो।''

इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने पति के प्रति विश्वासपात्र बना रहना कठिन था। मार्कण्डये का कथन कि कलियुग में यहाँ तक कि शूर वीरों की पत्नियों भी अपने पति के जीवन काल में परपुरुषों का आश्रय लेगी, एक दूसरा परोक्ष संदर्भ प्रस्तुत करता है।'' अत पति को जीवित अवस्था में उनका त्याग करना अनैतिक माना गया। इस तरह पति की मृत्यु के बाद विवाह किया जा सकता है। रामायण में कुम्भकरण का कथन था कि पति की मृत्यु कुलीन स्त्री के लिए एक महान विपत्ति थी हमें साधारण महिला के बारे में अनुमान करने में नेतृत्य कर सकती है, जहाँ ऐसा नहीं था क्योंकि उसका पुनर्विवाह किया जा सकता है। यह बात कर्ण के शब्दों द्वारा आगे और मजबुत हुई कि द्रोपदी दूसरा पति चुन सकती है. क्याकि यह सर्वविदित था कि महिलाएँ और खास कर वे महिलाएँ जो गुलाम है. निन्दनीय नहीं होती है यदि वे पति के चयन में स्वतंत्रता बरतती है। जबकि गुलामों में एक विवाहित महिला पति के रहते हुए दूसरा पति चुन सकती है तो एक विधवा के लिए तो यह उससे भी आसान रहेगा। निम्न जाति के हिन्दुओं में विधवा विवाह अभी भी प्रचलित है। यह सही है कि प्रथम विवाह के समारोह और उसके बाद के समारोहों में थोड़ी भिन्नता है। इस तरह सम्भव है कि निम्न जातियों के बीच विधवा विवाह बिल्कुल प्रचलित रहे हो। तथापि कुलीन स्त्रियाँ सोचती थी कि पुनर्विवाह एक पाप है। महाभारत के बाद के मत विधवा विवाह के इतने अधिक विरूद्ध है कि भीष्म सोचते हैं कि यह पसंद योग्य है कि एक कुँवारी विधवा जिसका विवाह चरम सीमा में नहीं पहुँचा है. जीवन का प्रायश्चित करती है. यद्रद्यपि कुछ इस मत के हैं कि यह नियोग द्वारा अपने छोटे देवर से संसर्ग कर सकती है।'' यह निश्चय ही विधवा विवाह के विरूद्ध निश्चित रूप से नियान से बुरी मानी गयी है। यद्यपि विधवा विवाह कुछ उदाहरण स्वरूप उद्धृत हुआ जो धीरे–धीरे मृतप्राय होता जा रहा था। संभव है जहाँ–तहाँ की घटनाएँ अस्तित्व में आयी हो, जो अत्यंत अलोकप्रिय थी एवं उनके विरुद्ध विधिज्ञों ने अपना सिद्धांत प्रतिपादित किया था। यह भी उल्लेखित किया जाता रहा है कि पुत्री को सिर्फ एक बार दान किया जा सकता है। यह न केवल आदर्श पतिव्रता सावित्री का मत था था बल्कि एक दूसरे सथान पर यह कहा गया है कि वह जो अपनी पुत्री को दुबारा दान करता है. वह दूसरे जन्म में कीड़ा के रूप में जन्म लेता है।'' अर्जुन की शपथ और और दुर्योद्धन की उक्ति भी इसी और इशारा करती है।'' उनकी सूची में जिसने श्रद्ध अन्न को ग्रहण करते हुए भागीदारों की पंक्ति को दुषित किया सिर्फ वे ही नहीं थे. जिसने ऐसी महिला से विवाह किया जिसका पहले ही एक बार विवाह हो चुका था बल्कि वे भी जिनका जन्म ऐसे विवाहों के द्वारा हुआ था।'' अब तक एक पौनर्भव को एक द्विवज माना जाता था। निश्चय ही वे नियम विधवा विवाह को निरुत्साहित करने हेतु था। पवित्रता के महत्व को विवाह के लिए आवश्यक योग्यता के रूप में जहाँ–तहाँ उल्लेख किया जाता रहा है और पतिव्रता आदर्शों के अवश्य ही आगे चलकर विधवा विवाह को निरुत्साहित किया। महाकाव्य कालीन विधवा जब पुनर्विवाह नहीं की या सती नहीं हुई तो एक अलग ही रास्ता अपनाया जो जंगल में रहकर कठोर जीवन व्यतीत करना या तप था। सत्यभामा और कुछ अन्य कृष्ण की रानियाँ अर्जुन के संरक्षण को बेकार अनुभव करती हुई प्रायश्चित को अपनायी और कठोर तप की।'' यह ठीक घरेलू जीवन के पीछे वन जीवन का तरीका जैसा था। अम्बिका, अम्बालिका और कुन्ती बच्चों के पालन हेतु घर में रूकी। बाद में जब उनके बच्चे व्यवस्थित हो गये तब वे भी कठोर प्रायश्चित और तप सम्पादन हेतु वन चली गयी। व्यास के द्वारा यह स्पष्ट करने के बाद कि उनके वंश के लिए बुरे दिन आगे आनेवाला है, सत्यवती अम्बिका और अम्बालिका के

साथ वन चली गयी और कठोर तप करते हुए मृत्यु को प्राप्त की। इस तरह हम वैद्य के विचार से सभी वस्तुएँ उलब्ध थीं, आदेश स्पष्ट है। बहुतों ने स्वच्छन्द रूप से पूर्ण उत्साह के साथ ऐसी इच्छा की थी जिसके कई उदाहरण मिलते हैं परंतु इससे अधिक उदाहरण नहीं मिलते हैं कि पूरी तत्परता से महिला अपने वैधव्य में सम्मिलित होती थी, क्योंकि उनके पड़ोसी एवं बच्चे उसे अपशब्द कहते थे। वे सिर्फ कष्टकारक परिवेश के कारण हीं नहीं बल्कि व्यक्गित दशा के कारण से भी वैधव्य में सम्मिलित नहीं होती थी। उपलब्ध तीन साक्ष्य से स्पष्ट है कि विधवा सामाजिक परिवेश में सम्मिलित होती थी और यह अनुमान किया जा सकता है कि जिनके साक्ष्य उपलब्ध नहीं है. ऐसी औरत भी सामाजिक परिवेश में सम्मिलित होती थी। इस तरह उन्हें एक नये प्रकार की जिन्दगी प्रारम्भ करने का आधार उपलब्ध होता था। कुछ औरत जो सामाजिक परिवेश में प्रवेश करती थी, उसे सम्मान अवश्य मिलता था। सांसारिक जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें अनवरत सुख–दुःख की यादाश्त होने पर उसे कुचलना पड़ता था। उनके उपर यह प्रतिबन्ध लगा हुआ था कि वह अपने पति की चिता पर अपना दाह–संस्कार नहीं कर सकती और न ही पुनर्विवाह कर सकती थी। यह विधवा के सामने कठिनाई की पराकाष्ठा थी। विधवाओं के उपर अपने पति की चिता पर जलने सम्बन्धी आचरण को लेकर निश्चित रूप से प्रतिबन्ध था। इस विषय पर बौद्धकालीन पुस्तको के पूर्ण मौन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अगर ऐसा होता था तो यह कठोरतम प्रथा पूर्णरूपेण अप्रत्यक्ष था। वैदिक युग में ऐसा होने का कोई प्रमाण नहीं है। इसतरह कोई ऐसी प्रचलन नहीं थीं जिसका गौतम विरोध करते। अगर ऐसा हुआ होता तो प्रायः निश्चित रूप से गौतम इसका विरोध करते और इस प्रथा की निन्दा करते। अतः मौन इस प्रथा के नहीं होने का सिर्फ संकेत दे सकता है। अनिर्वाय रूप से या स्वेच्छा से अपने पति की चिता पर विधवाओं के अपन बलिदान एवं त्याग के विषय में बहुत लिखा जा चुका है और इससे कुछ मुख्य निष्कर्ष का यहाँ उद्धत किया जा सकता है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सती होना प्राचीन प्रथा है जो विभिन्न समुदायों में होता था और विस्तृत रूप में बँटा हुआ था।'' इस प्रथा का प्रचलन प्रायः भारत में नहीं प्रबन्ध थी। इसके अतिरिक्त ये दोनों एवं पत्नियाँ अधिक सम्मान पाती थीं। उन्हें अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी और अपने ढंग से जीवन–यापन के लिए विस्तृत रूप से मुक्त थी। विश्लेषण विधवाओं के मुण्डन की प्रथा, जो बहुत ही विचित्र एवं दुर्भाग्यपूर्ण है का उद्गम एवं प्रसाद आधुनिक है। विधवा के त्याग के आदर्श के अनुरूप उसके बाहरी स्वरूप को बनाना इसमें निहित है जिसका उसे अनुसरण करना पड़ता था। सन्यासी और तपस्वनी अपने सिर को मुड़ाते थे। यह अनुभव किया गया कि विधवाओं को भी ऐसा ही करना चाहिए। ऐसी आशा की गई कि इससे विधवाओं के लिए एक तपस्वी का वातावरण निर्माण करने में मदद मिलेगी। अपने चित्त की दृढ़ता के लिए ब्रह्मचर्य जीवन बीताना उसके लिए आवश्यक था। अतः आकृति की सुन्दरता को समाप्त करने के लिए ऐसा विधान दिया गया और ऐसा सोचा गया कि इससे विधवा की बहुत बड़ी रक्षा होगी। जैसा कि हमलोगों ने पहले ही देखा है कि पाँचवीं शताब्दी से पूर्व विधवा को नियोग एवं पुनर्विवाह करने की अनुमति दी गयी थी। मुण्डन की प्रथा उस समय तक स्पष्ट रूप में नहीं थी। विधवाओं के कर्त्तव्यों जिनके उल्लेख प्रारंभिक स्मृतियों में विस्तृत रूप में किये गये हैं, बाल मुड़ाना प्रतीकात्मक नहीं है। कुछ अधिकारी बाल को सँवरने का निषेध करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय बाल नहीं मुड़ाया जाता था। धृतराष्ट्र की विधवा पुत्र–वधु अपने बालों को सुसज्जित करती थी, जैसा कि महाकाव्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख है। उस समय बाल मुण्डन की

प्रथा नहीं थी। शिलालेखीय प्रमाण से यह प्रमाणित होता है कि विधवावस्था में उसके घुँघराले बाल सीधे हो जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय विधवा बाल में तेल नहीं लगाती थी इस तरह हम कह सकते हैं उस समय विधवा बाल तो रखती थी परंतु अपनी विलासिता या रूप की सुन्दरता के लिए बालों में तेल लगाना, उसे सँवारना तथा सुसज्जित करना उसके लिए निषेध था। मुण्डन की प्रथा कब प्रचलित हुई यह निश्चित रूप से कहना आसान नहीं है। उपर उल्लेखित शिलालेखीय एवं स्मृतियों के आधार पर ऐसा लगता है कि नवीं शताब्दी के पूर्व तक यह प्रथा प्रचलित नहीं थी। वेद व्यास जैसी कुछ स्मृतियों, जो सभवतः उक्त काल के बाद प्रकाशित हुई. से स्पष्ट होता है कि जो विधवा सती नहीं होती है. उसे मुण्डन करना चाहिए।'' ऐसा कहा गया कि यदि विधवा अपने बालों के जुड़े को बाँधती है तो उससे आभास होता था कि विधवा दूसरे संसार में अपने पति के बन्धन में है। उस काल तक नियोग और पुनर्विवाह पूर्ण रूप से प्रचलित थे। इससे इस प्रथा को एक गति मिली, जिसका वर्णन बहुत से सौदागरों एवं व्यवसासियों ने 16वीं शताब्दी में किया है। विजयनगर के राजदरबार में यह बिल्कुल सामान्य था। इस तरह हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह प्रथा 12वीं शताब्दी में सामान्य रूप से प्रचलन में आयी। उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में यह प्रथा अधिक सामान्य थी। जैन एवं बौद्ध काल में तपस्विनी या भिक्षुणी बालों को मुड़ा लेती थी विधवाओं के मुण्डन की प्रथा इसी तपस्विनी की नकल एवं प्रचलन प्रतीत होती है। हर हालत में यह कुछ आस्तिक विचारकों के लिए नास्तिक प्रवृति की और कुछ हद तक सकेत करता है और वे पूरे यत्न से इसका विरोध करने के लिए अग्रसर हुए। यह बात दक्षिणी भारत के श्री वैष्णवों के साथ था जिनके बहुत से संहिता औरतों के बाल मुड़ाने का विरोध करते हैं। यह विरोध, कुमारी कन्या एवं विधवा दोनों के लिए हुआ। कुमारी कन्या के बाल मुड़ाने का प्रश्न एक ही आधार पर उठा कि अगर वह तपस्विनी बनना चाहती है तो मुण्डन कर सकती है। इस कार्य के लिए उसे बौद्धों एवं जैनियों से अनुमति प्राप्त करनी होगी। श्री वैष्णवों द्वारा इस प्रथा का बहुत जोरदार विरोध था। उन्होंने घोषण की कि जो औरत अपना मुण्डन करती है वह अति भयानक नरक का भागी बनती है। बाद के जीवन में वह चंडालनी हो जाती है। विधवा के लिए मृत्यु पर्यन्त बाल को धारण करना सबसे उपयुक्त आचरण था। दक्षिण भारत के वैष्णवों के बीच इस विरोध से अन्ततः कोई लाभ नहीं मिला। बाल मुड़ाने की प्रथा अठारहवीं शताब्दी तक बिल्कुल सामान्य थी। धार्मिक क्रिया–कर्म में शरीक होने से वह अशुद्ध एवं अयोग्य समझी जाती थी, जब तक कि वह बाल नहीं मुडा लेती थी। आस्तिक लोग न तो उसके हाथ से पानी और न ही भोजन ग्रहण करते थे। हिन्दू–सुधारकों ने उन्नीसवों शताब्दी के अन्त में इस प्रथा के विरोध में एक जबर्दसत आक्रमण किया। इस प्रथा के विरोध में प्रिंस आगरकर के लेख ने महाराष्ट्र में एक उत्तेजना को जन्म दिया। समाज ने यह महसूस किया कि इस प्रथा से यह जाहिर होता है कि विधवा संदेश रहित पुरुषों की दया का पात्र होती थी। बीसवीं शताब्दी में यह प्रथा तेजी से समाप्त होने लगी। वर्तमान समय में व्यवहारिक रूप में यह प्रथा शहरों एवं नगरों में मृतप्राय हो गयी है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी यह प्रथा है परंतु इस की भी संख्या अल्प है। विधवा की स्थिति के संबंध में प्राचीन स्मृति के निर्देशानुसार कठोर ब्रह्मचर्य का जीवन और आत्मनिरोध का पालन करना इस कालावधि में उसके लिए वांछनीय था। विधवा अपने पति की याद में जितना अधिक विश्वस्त रहती है (मेधा तिथि के अनुसार)। वह (विधवा) सम्पत्ति पाने के लिए सक्षम है जिसकी देखभाल राजा करते हैं। लेकिन उसके विपरीत स्थिति में वह पति की सम्पत्ति के अधिकार से

न सिर्फ अयोग्य ठहराई जाती है बल्कि उस अधिकार से बाहर हटा दी जाती है। हम पाते हैं कि तीसरी शताब्दी ई०पू० के अवसान काल में अपने पति की सम्पत्ति पर विधवा का अधिकार किसी पंच द्वारा मान्य नहीं होता था। वैदिक मूल ग्रंथ निश्चित रूप से उस के इस अधिकार का विरोध करता है।'' धर्मसूत्र के अधिकांश लेखक इसी विचार से सहमत है। वैदिक मूल ग्रंथ के आधार पर बौधायन स्पष्ट रूप से सम्पत्ति के अधिकारी के रूप में विधवा के दावा को रद्द करता है। आपस्तम्ब के विचारानुसार पुत्र के नहीं होने पर सम्पत्ति को न सिर्फ विधवा पर बल्कि उसके निकटतम सपिण्ड पुरूष पर सौंपी जानी चाहिए। इसमें असफल होने पर यह सम्पत्ति उसके (पुरुष) गुरू को सौंपी जानी चाहिए। अगर गुरू भी जीवित नहीं हो तो दान स्वरूप उसके शिष्य को सम्पत्ति सौंपी जानी चाहिए। सम्पत्ति की अवनति के विषय में अपस्तम्ब की यह प्रस्तुत योजना अपने पति की सम्पत्ति पर विधवा के अधिकार का उल्लेख करती है।

भारती साहित्य में यह विचार हमेशा प्रभावी रहा है कि पत्नी पति का क्षेत्र है। उसमें जो कुछ भी उपज होती है, यह उसकी है। इस बात की कोई चर्चा नहीं है कि बीच किसने शेया।'' मालिक अपने से भी क्षेत्र की जोताई कर सकता है मा दूसरों के द्वारा भी करवा सकता है लेकिन फल हमेशा मालिक का ही है इन वास्तवितकता के आलोक में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि रचयिता एवं सम्पादक बदलते सामाजिक परिस्थितियों को अनुसार विधया की स्थिति का वर्णन कर रहे थे। प्रायः वैदिक काल से ही आज तक विधवाओं के लिए ब्रह्मचर्य जीवन सर्वशेष्ठ माना जाता रहा है। परंतु इसके अतिरिक्त विधवा पुनर्विवाह, ''नियोग तथा सती प्रथा भी समयानुसार विधवा के लिए विकल्प था और इन प्रथाओं का प्रचलन भी रहा है। वैदिक काल से ही देवर के साथ विधवा की शादी का संकेत मिलता है। महाभारत काल में नियोग प्रथ्था का सर्वाधिक व्यवहार हुआ। इस तरह नियोग एवं विधवा पुनर्विवाह ने एक दूसरे को स्थान प्रदान किया। पतिव्रता, पवित्रता एवं वैराग्य को आदर्श के कारण नियोग का व्यवहार अरूचिकर एवं पृणास्पद हो गया तब विधवा के लिए प्रायश्चित निर्देशित किया गया। किंतु जब अनेक प्रकार की परिस्थितियों के कारण यथा– पतिव्रता आदर्श का उत्कर्ष, एक पत्ति के प्रति वफादारी आदि पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया तब सती के रूप में मानव बलिदान की प्रशंसा की गयी और इसे प्रोत्साहित किया गया। इस तरह ये सभी परिस्थितियों एवं प्रथाएँ व विकल्प प्राचीन काल में थीं तथा महान महाकाव्य में स्थान पाती है। 19वीं सदी में इस अमानुषिक प्रथा (सती) का घोर विरोध हुआ और अन्ततोगत्वा वैधानिक रूप से इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- ऋग्वेद–1 87, 3
- मनुस्मृति– 5. 157–160
- बौधायन धर्मसूत्र– 2. 2. 66–68
- याज्ञवल्क्य०– 1, 52

- मनुस्मृति– 9, 22
- आदिपर्व– 104
- मनुस्मृति – 5, 168
- चाणक्य– 2
- नारद०– 12, 97–101
- मनुस्मृति – 5, 160
- अथर्ववेद– 9, 5, 27,28
- महाभारत– 2, 68, 81–83
- महाभारत– 1. 121, 27–29
- महाभारत– 1, 199, 5–12
- अमरकोष – 207
- रामायण– 2, 21, 61
- रामायण– 4, 23, 12
- महाभारत– 1, 158, 12,13
- महाभारत– 1. 158, 16–18
- महाभारत– 1. 128, 129
- रामायण– 6, 92, 47
- रामायण– 4, 23, 8
- रामायण– 4, 25, 33–35
- महाभारत– 18. 5. 25
- रामायण 6. 111, 53
- महाभारत– 12. 86. 23 नारद स्मृति 12, 28,29
- महाभारत– 2. 5. 54, वशिष्ठ धर्मसूत्र– 19. 20
- महाभारत– 13. 61, 26, (न रूदंती धर्म हरेत)
- महाभारत 13, 23, 64
- महाभारत– 7. 77, 26, 1, 109, 11
- महाभारत 12, 72, 12 31. रामायण– 6. 128, 98
- हापकिन्स – द ग्रेट इपिक ऑफ इंडिया संस्करण–1920,
- रामायण– 2, 66, 12
- महाभारत– 1. 126, 32
- महाभारत 12, 149, 15
- मैक्डोनेल–वैदिक मेथोलॉजी पु०– 165
- महाभारत– 1. 125, 23
- महाभारत– 1, 103

- उपाध्याय–वीमेन इन दी ऋग्वेद पृ०– 95
- महाभारत– 12, 72, 12
- महाभारत – 7, 78, 2
- महाभारत– 3, 188, 64
- महाभारत– 13, 44, 52–53
- महाभारत– 12, 111, 83
- महाभारत– 7, 73, 27
- महाभारत– 13, 90, 15 25.
- महाभारत– 16. 7, 74
- महाभारत– 1. 128,6–13
- वैद्य–महाभारत मीमांसा– अध्याय 7. पृ०– 227
- गौतम धर्मसूत्र– 18. 9–14, बौद्धायन धर्मसूत्र– 2. 2. 3. 17
- पराशर स्मृति– 4, 25–28
- जातक– पृ०–19,67,439,547
- थेरीगाथा– 19
- वेस्टरमार्क– हिस्ट्री ऑफ ह्युमन मैरेज 5वीं संस्करण, भाग–1, पृ० 317–320. टेलर–ऑरिजीन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ मोरल इंडिया, भाग–1, पृ० 474 वेस्टरमार्क– हिस्ट्री ऑफ ह्युमन मैरेज ऽवीं संस्करण, भाग–1, पृ०–319
- वेस्टरमार्क– 317
- महाभारत– 15, 27, 16
- वेद व्यास– 1, 53
- स्कन्द पुराण, काशीकांड– 4, 73
- मनु० पर– 8, 28
- तैत्तरीय संहिता– 6, 58, 2
- बौधायन धर्मसूत्र 1, 5, 113–115
- आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 6, 14, 2, 3
- गौतम0– 28, 12 67. मनु०– 9, 185, 118–189
- मनु०– 9, 217
- मनु० पर कुल्लकू की टीका– 9, 187 9